इंसानियत की उठान

आखरी नबी की जीवनी की रोशनी में

सैय्यदुल उलेमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी (ताब सराह)
अनुवादक – मु0 र0 आबिद

आप (हज़रत मुहम्मद स0) चालीस बरस की उम्र में रिसालत (ईशदूत होने) पर मबऊस (निर्धारित) हुए, तेरह साल हिजरत से पहले मक्के की ज़िन्दगी है और दस साल हिजरत के बाद मदीने की ज़िन्दगी।

यह तीनों काल बिलकुल अलग–अलग परिस्थितियाँ रखते हैं जिनमें से हर एक काल बिलकुल एकरंगा है; किसी विचलन और अस्थायी स्वभाव को नहीं दिखाता मगर वे सब काल आपस में बहुत अलग हैं।

पहले चालीस बरस की अवधि में ज़बान बिलकुल चुप और केवल चरित्र के जौहर (सुलक्षण) खुले। यही आपकी सच्चाई का एक मनोवैज्ञानिक प्रमाण है, क्योंकि जो ग़लत दावा करने वाले होते हैं उनके कथनों और अभिव्यक्तियों की गति को देखा जाए तो ऐसा लगेगा कि वहाँ पहले उनके दिल–दिमाग़ में विचार आता है कि हमें कोई दावा करना चाहिए मगर उन्हें हिम्मत नहीं होती, इसलिए दुविधा भरे शब्द कहते हैं जिन से कभी सुनने वालों को घबराहट होती है और कभी इतमिनान, फिर वह धीरे–धीरे पैर आगे बढ़ाते हैं। पहले कोई ऐसा दावा करते हैं जिसको कोई माने–मतलब पहनाकर जनमति के अनुसार बनया जा सके या उसकी असलियत सिर्फ़ ख़ास–ख़ास लोग समझ सकें और आम लोग न समझ सकें। जब झिझक निकल जाती है तो फिर जी कड़ा करके खुलकर दावा कर देते हैं। इसकी पास की मिसालें अली मुहम्मद बाब और गुलाम अहमद क़ादियानी में बहुत आसानी से ढूँढी जा सकती है।

इस्लाम के पैग़म्बर (स0) की ज़बान से चालीस बरस तक कोई शब्द ऐसा नही निकला जिससे लोग रिसालत की दावेदारी का शुब्हा भी कर सकते या उनमें कोई बेचैनी पैदा होती। ग़लत से ग़लत रिवायत (बयान) ऐसा नहीं जो बताये कि काफ़िरों (नास्तिकों) ने आप (स0) के किसी शब्द से ऐसे दावे का आभास किया हो जिस पर उनमें रोष पैदा हुआ हो और फिर आपको उसके बारे में सफाई देने की ज़रूरत हुई हो। बल्कि इस काल में आपका काम सिर्फ़ अपने ऊँचे चरित्र का कर्यात्मक चित्र दिखाना था जिसने एक चुम्बकीय खिचाव के साथ दिलों को राम कर लिया था और आपकी लोक–प्रियता व्यापक हैसियत रखती थी। इसके बाद चालीस साल की उम्र में जब रिसालत का दावा किया तो वह बिलकुल वही था जो आख़िर तक आपका दावा रहा। यह नहीं हुआ कि पहले इस दावे में कमी, मन्दी हो फिर तेज़ी पैदा हो। या पहले दावा कुछ हो और फिर धीरे–धीरे इसमें बढ़ौती हो। अब रिसालत के इस दावे के बाद आप (स0) को कितनी मुसीबतें और तकलीफें सहना पड़ीं वह सब को मालूम है। यह वह संकटमय काल था जब आपके शुभ सर पर कूड़ा–करकट फेंका जाता था, पाक शरीर पर पत्थरों की बारिश होती थी। तेरह बरस इसी तरह बीतते हैं मगर एक बार भी ऐसा नहीं होता कि

उनका हाथ तलवार की तरफ चला जाए और जिहाद का इरादा किया जाए।

अगर कोई रसूल (स0) के सिर्फ इस जीवनकाल को देखे तो यक़ीन करेगा कि जैसे आप (स0) बस अहिंसा के समर्थक हैं। यह तरीक़ा इतना स्थायी है कि कोई उत्पीड़न, कोई दिल पर ठेस, कोई व्यंग—उलाहना आप (स0) को इस रास्ते से हटा नही सकता। पहले चालीस बरस ही की तरह अब यह रंग इतना गहरा और यह तरीक़ा इतना पक्का है कि इस बीच कोई एक घटना भी इसके विपरीत नही उबरती। कोई बेबस और बेकस भी हो तो किसी समय तो उसे जोश आ ही जाता है और वह मरने—मारने पर तैयार हो जाता है, फिर चाहे उसे और ज़्यादा ही दुख क्यों न सहन करन पड़े। पर एक दो बरस नहीं तेरह साल लगातार एक अडिग सहन और शान्ति के साथ वही बिता सकता है जिसके सीने में वह दिल और दिल में वह भावनाएँ ही न हों जो जंग पर तैयार कर सकती हों।

इसी बीच वह समय आता है कि मुशरिक (खुदा का साथी मानने वाले) आप (स0) के जीवन—दीप को बुझाने का फैसला कर लेते हैं और एक रात तय हो जाती है कि उस रात सब मिलकर आप (स0) को शहीद कर डालें। उस वक़्त भी रसूल (स0) तलवार नियाम से बाहर नहीं लाते, किसी मुक़ाबले के लिए खड़े नहीं होते बल्कि खुदा के हुक्म से शहर छोड़ देते हैं। जो मुहम्मद (स0) की पहचान न रखता हो वह इस हटने को क्या समझेगा? यही तो कि जान के डर से शहर छोड़ दिया। और फिर वास्तविक्ता भी यह है कि जान के बचाव के लिए यह प्रबन्ध था मगर केवल जान नहीं बल्कि जान के साथ उन उद्देशों को संरक्षण जो जान से सम्बद्ध थे। बहर हाल इस चलन यानी वतन छोड़ने को कोई किसी शब्दसे संज्ञा दे किन्तु दुनिया इसे बहादुरी को ज़ाहिर करने वालाकाम नहीं समझेगी। और सिर्फ इस काम को देखकर अगर इस व्यक्ति के बारे में कोई राय बनायगा तो वह वास्तविक्ता के अनुरूप नही हो सकती बल्कि भ्रम का सबूत होगी।

अब तिरपन बरस की आयु है और आगे बुढ़ापे के बढ़ते हुए क़दम हैं। बचपन और जवानी का अधिक हिस्सा खामोशी में बीता है फिर जवानी से लेकर अधेड़ उम्र की स्थितियाँ पत्थर खाते और सहन करते बीतीं हैं और आख़िर में अब जान की रक्षा के लिए शहर छोड़ दिया है। भला किसे विचार हो सकता है कि जो एक समय में शन्ति—प्रियता से कमा लेते हुए शहर छोड़ दे वह बहुत जल्दी फौजों की कमान करते दिखेगा। जबकि मक्का ही नहीं वरन मदीने में आने के बाद भी आप (स0) ने जंग की कोई तैयारी नहीं की। इसका सबूत यह है कि एक साल की अवधि के बाद जब दुश्मनों से टकराव की नौबत आयी तो आप (स0) का दल कुल 313 आदमियों पर आधारित था, सिर्फ 13 तलवारें थीं और केवल दो घोड़े थे। ज़ाहिर है कि एक साल की तैयारी का नतीजा यह नहीं हो सकता था। जबकि एक साल में रचनात्मक काम बहुत से पूरे हो गये। मदीने में कई मस्जिदें बन गयीं, मुहाजिरों (मक्के से मदीने आय हुए लोग) के रहने के लिए मकान तैयार हो गये बहुत से दीवानी व फौजदारी के क़ानून लागू हो गये और इस तरह समुदाय का शासनिक संघटन हो गया मगर जंग को कोई सामान न जुटाया गया। इससे भी पता चल रहा है कि आपकी ओर से जंग को कोई सवाल नही है। मगर जब मुशरिकों की ओर से आक्रामक कार्यवाही हो गयी तो इसके बाद ''बद्र'' है, ''ओहद'' है, ''ख़न्दक़'' है, ''ख़ैबर'' है, ''हुनैन'' है। फिर यह नहीं कि अपने घर में बैठकर फौजें भेजी जाएँ और जीतों का सेहरा अपने सर बाँधा जाए, वरन्

खुदा के रसूल (स0) का चरित्र यह है कि छोटे और महत्वहीन लड़ाइयों तो किसी को नायक बनाकर भेज दिया है परन्तु हर महत्वपूर्ण और संकट के मौक़े पर सेनानायक खुद होते और यह नहीं कि साथियों सिपर बनाया जाए उनके घेरे में हों बल्कि इस्लाम के सबसे बड़े सिपाही हज़रत अली (अ0) सुपुत्र अबुतालिब की गवाही है कि जब लड़ाई का हंगामा (संग्राम) अत्यन्त तीव्रता पर होता था तो सदा रसूल (स0) हम सबसे ज़्यादा दुश्मन के निकट होते थे। फिर यह भी नहीं कि फौज के सहारे (युद्ध के लिए) उठ खड़े हों बल्कि ''उहद'' में यह समय भी आ गया कि दो एक को छोड़ बाक़ी सब मुसलमानों से रणक्षेत्र ख़ाली हो गया मगर उस वक़्त भी वह जो कुछ पहले, देखने में, जान बचाने को शहर छोड़ चुका था वह इस समय संकट की इतनी सख़्ती के समय जब आस—पास कोई भी सहारा देने वाला दिखायी नही देता अपनी जगह से एक क़दम भी पेछे नही हटता, घायल हो जाते हैं, चेहरा खून से भीग जाता है, कवच की कड़ियाँ टूटकर सर के अन्दर घुस जाती हैं, मुबारक दाँत चोटिल हो जाते हैं मगर अपनी जगह से पैर नहीं हटाते।

अब क्या अक़्ल व इन्साफ के अनुसार से हिजरत को जान के डर से इस माने में समझा जा सकता है जिससे बहादुरी पर धब्बा आये? हरगिज़ नहीं। यही हमने पहले भी कहा था कि सिर्फ़ इस काम को देख कर जो राय बनायी जायगी वह भ्रम का सबूत होगी। इस भ्रम का पर्दा इस समय तो निश्चय ही टूट जाना चाहिए।

रसूल (स0) के शौर्य की सही पहचान खुदा के शेर हज़रत अली (अ0) को थी। ''ओहद'' की लड़ाई में ''कुतिल मुहम्मद'' (मुहम्मद मारे गये) की आवाज़ थी जिसने सारी इस्लामी फ़ौज के पाँव उख़ाड़ दिये और इस ख़्याल ने अली (अ0) पर क्या असर किया इसे स्वयं आप ने बाद में बयान किया कि मैंने नज़र डाली, तो अल्लाह के रसूल (स0) नज़र न आए, मैंने दिल में कहा कि दो ही रूप है या वह शहीद हो गये और या अल्लाह ने उन्हें ईसा (अ0) की तरह उन्हें आसमान पर उठा लिया। दोनो परिस्थितयों में मैं अब ज़िन्दा रहकर क्या करूँगा? बस यह सोचना था और नियाम तोड़कर फेंक दिया और तलवार लेकर फौज में डूब गये। जब फ़ौज हटी तो रसूल (स0) दिखे। देखने की यह चीज़ है कि हज़रत अली (अ0) को सिर्फ़यह दो सोच हुए, रसूल (स0) शहीद हो गये या खुदा ने आसमान पर उठा लिया। यह भ्रम भी नही हुआ कि शायद रसूल (स0) भी मैदान से किसी बचत के कोने की और चले गये हों। यह अली (अ0) का ईमान (आस्था) है रसूल (स0) की बहादुरी पर। ईसाईयों ने रसूल (स0) का चित्र सिर्फ इसी युद्ध काल का यूँ खीचा कि एक हाथ में कुर्आन है और एक हाथ में तलवार। मगर जिस तरह रसूल की सिर्फ़ इस ज़िन्दगी को सामने रखकर वह राय बनाना ग़लत था कि आप मात्र अहिंसा के समर्थक है या सीने में वह दिल ही नहीं रखते जो युद्ध संग्राम कर सके। उसी प्रकार केवल दूसरे काल को सामने रखकर यह चित्र खींचना भी अन्याय है कि बस कुर्आन और तलवार। आखिर यह किसका चित्र है। मुहम्मद मस्तफा (स0) का ना! तो मुहम्मद नाम तो उस पूरे चरित्र के मालिक व्यक्ति का है जिसमें वह चालीस बरस भी हैं, और वह तेरह साल भी हैं और अब यह दस वर्ष भी हैं। इस व्यक्तव का सही चित्र तो वह होगा जो जीवन के इन सभी प्रकरणों को दिखा सके। यह केवल एक पहलू को दिखाने वाला चित्र तो मुहम्मद मुस्तफा (स0) का नही समझा जा सकता।

फिर इस दस बरस में भी ''बद्र'' और ''ओहद'', ''ख़न्दक़'' तथा ''ख़ैबर'' से आगे बढ़कर

तनिक ''हुदैबिया'' तक भी तो आइये। यहाँ रसूल (स0) किसी जंग के इरादे से नहीं बल्कि हज के मन से मक्के की ओर आ रहे हैं, साथ में वही उत्साही, विजयों को पाये हुए सिपाही है जो हर मैदान जीतते रहे हैं और सामने मक्के में वही हार खाया दल है जो हर मैदान में हारता रहा है और इस समय वह बिलकुल असंगठित और अव्यवस्थित भी है फिर भी उनकी हरकत ''खिसयानी बिल्ली खम्बा नोचे'' वाली है कि वह रास्ते की रुकावट होते हैं कि हम हज करने न देंगे। अरब की अन्तर्जातीय क़ानून के अनुसार हज का अधिकार काबे में हर एक को था। उनका रसूल के रास्ते में आड़े आना सिद्धान्ततयः जंग का आधार बनने के लिए बस काफी था। मगर रसूल (स0) इस मौक़े पर अपने दामन को चढ़ाई करके जंग करने के इल्ज़ाम से अलग रखते हुए सुलह समझौता कर के वापस हुए। और सुलह भी कैसी शर्तों पर? ऐसी शर्तों पर जिन्हें बहुत से साथ वाले अपने दल के लिए अपमान का कारण समझ रहे थे और इस्लामी दल में आम तौर से बेचैनी फैली हुई थी। ऐसी शर्तें थीं जैसी एक विजेता किसी हारे हुए से मनवाता है, इस समय वापस जाइये, इस साल हज न कीजिये, आने वाले साल आइयेगा, केवल तीन दिन मक्के में रहियेगा, चौथे दिन आप में से कोई दिखायी न दे, साल के बीच हममें से कोई भाग कर आपके पास जाय तो आपको वापस करना पड़ेगा, और आपमें से कोई भाग कर हमारे पास आये तो हम वापस नहीं करेंगे। उन्हें यह शर्तें पेश करने की हिम्मत क्यों हुई? निश्चय ही सिर्फ़ इसलिए कि वह नबुवत का मिज़ाज समझ गये थे कि आप इस समय जंग नही करेंगे बस तुच्छ जब यह समझ लेता है कि सामने वाला तलवार नही उठायेगा तो वह बढ़ता ही चला जाता है। आपने सब शर्तें मान लीं और वापस चले गये। इसके बाद जब मुशरिकों की तरफ से क़रार तोड़ा गया तो हज़रत (स0) ने विजयी रूप से मक्के में प्रवेश किया तो उस समय पिछली घटनाओं के आधार पर एक इन्सान की क्या भावनाएँ हो सकती थीं? जिन्होंने तेरह बरस पुनीत शरीर पर पत्थर मारे, जिन्होंने अपमान और कष्ट पहुँचाने में कोई कसर न उठा रखी, उनके हाथों वतन छोड़ना पड़ा और इसके बाद भी उन्होंने चैन लेने न दिया बल्कि जब तक दम में दम रहा बार–बार खूनी हमले करते रहे जिसमें कितने ही परिजन और दोस्त मिट्टी और खून में तड़पते दिखे विशेषतयः अपने हमदर्द चाचा जनाब हमज़ा का हत्या के बाद सीना काटते हुए देखना। आज वही दल सामने था और बिलकुल बेबस, अपने क़ब्ज़े में। यह समय था कि उनके पिछले सभी बरबर्तापूर्ण कुकर्मों की आज सज़ा दी जाती, मगर इस साकार ईश्वर–दया ने जब उन्हें बेबस पाया तो आम माफी का एलान कर दिया और ख़ून की एक बूँद धरती पर गिरने न दी।

अब दुनिया बताये कि रसूल (स0) जंग पसन्द करने वाले थे या शान्तिप्रिय। उनकी जंग या सुलह कोई भी भावनाओं के आधार पर न थी बल्कि दायित्व के आधीन काम होता था। जिस समय दायित्व की माँग ख़ामोशी थी चुप रहे और जब हालात के बदलने से जंग की ज़रूरत पड़ गयी तो जंग करने लगे, फिर जब सुलह (समझौते) की सम्भावना पैदा हो गयी और आचरण की ऊँचाई की माँग सुलह करना हुआ तो सुलह कर ली और जब दुश्मन बिलकुल बेबस असहाय हो गया तो दया–विनम्रता से काम लेकर माफ़ कर दिया।

यह सब हालात के भिन्नता से दायित्व में बदलाव हैं जो आप (स0) के चरित्र में दिखायी देता रहा है।

दायित्व का यह पालन स्वभाव के दबाव से जितना आज़ाद हो वही मानवता की मेराज (उत्थान) है।